International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 953-956

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 953-956
www.allresearchjournal.com
Received: 17-11-2016
Accepted: 21-12-2016

डॉ० रामपाल
संस्कृत विभाग, के०ए० (पी०जी०) कॉलेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ० रामपाल
संस्कृत विभाग, के०ए० (पी०जी०) कॉलेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

पाणिनीय एवं पाल्यकीर्ति शाकटायन के व्याकरण में कारक विवेचन

डॉ० रामपाल

सारांश
"क्रियां निर्वर्त्तयतीति क्रियानिर्वत्तकं कारकम्" अर्थात् क्रिया का जो निवर्त्तन तथा निर्वहण करे या जिसके बिना क्रिया का रहना कोई अर्थ नहीं रखता हो वही कारक कहलाता है। यद्यपि शब्दशास्त्र की दृष्टि से क्रिया की सर्वत्र मुख्यता द्योतित होती है। क्योंकि किसी भी कारक के मूल में क्रिया का ही अस्तित्व होता है "क्रियानिमित्तत्वं कारकत्वम्" दूसरे निमित्तों के होते हुए भी जब तक क्रिया करने वाला कर्त्ता ही न होगा, तब तक क्रिया की प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती। दूसरे निमित्तों का व्यापार भी कर्त्ता के ही अधीन है, जब चाहे इस व्यापार को हटा सकता है, अतः मुख्य कारककर्त्ता ही है।
भाषाव्यवहार में भी पद का प्रयोग होता है; केवल प्रकृति अथवा प्रत्यय का नहीं– "न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च प्रत्ययः" (कैयट म.भा. प्रदीप, अध्याय–3, पृष्ठ 12) पाणिनीय मत में विभक्ति[1] सिद्ध होने पर ही शब्द (प्रकृति) की पद संज्ञा है।[2]
यहाँ पाल्यकीर्ति शाकटायन का पद के सन्दर्भ में चिन्तन एवं विश्लेषण इस तरह है– "सुङ्पदम्" (शा.व्या. 1.2.9) "सुघिति प्रथमैकवचनादारभ्य आ महिघो घकारेण प्रत्याहारः सुङन्तं पदसंज्ञं भवति।" अर्थात् शाकटायन के अनुसार सुङ् से तात्पर्य सुबन्त एवं तिङन्त दोनों से है।
पाल्यकीर्ति शाकटायन ने मौलिकता के लिए कारक प्रकरण में सूत्र शब्दावली भेद, वार्तिकों का स्वतंत्र सूत्ररूप में प्रयोग, वार्तिक तथा सूत्रों का एक सूत्र रूप में प्रयोग एवं नवीन प्रयोग करके भाषा जगत को एक दिशा प्रदान की है।

कारक विवेचन
कारक का मुख्य अर्थ है करने वाला। करोतीति कारकम्। क्रिया के जनक को कारक कहा जाता है अर्थात् क्रिया की निष्पत्ति (सिद्धि) में जो निमित्त होता है, कारक कहलाता है। क्रियानिमित्तत्वं कारकत्वम्। दूसरे निमित्तों के होते हुए भी जब तक क्रिया करने वाला कर्त्ता ही न होगा, तब तक क्रिया की प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती। दूसरे निमित्तों का व्यापार भी कर्त्ता के अधीन है। जब चाहे उस व्यापार को हटा सकता है, अतः मुख्य कारक कर्ता ही है।[3]
भगवान सूत्राकार इसका लक्षण करते हैं– स्वतन्त्रः कर्ता (अष्टा. 1.4.54)। कर्ता की यह स्वतन्त्रता क्या है, यही कि कर्ता दूसरे करणादि कारकों से प्रेरित होकर प्रवृत्त नहीं होता, बल्कि स्वयं उनका प्रवर्तक होता है, यह नहीं कि करणादि की उसे अपेक्षा नहीं।[4] क्रिया के दूसरे निमित्त तो उसके सहायक होने से ही कारक कहलाते है। वस्तुतः वे उपकारक है। ये अपनी–अपनी अवान्तर क्रिया के द्वारा प्रधन क्रिया को ही निष्पन्न करते हैं।
एक प्रातिपादिक (नाम) के अर्थ का जो दूसरे प्रातिपदिक (नाम) के अर्थ के साथ सम्बन्ध होता है? वह कारक नहीं। कारक का क्रिया में अन्वय होता है। अतः "क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्" ऐसा भी कारक का लक्षण किया जाता है। 'मैं धर्म का लक्षण सुनता हूँ।' यहाँ 'धर्म' का 'सुनना क्रिया' में अन्वय नहीं है। सो यह कारक नहीं और न ही यह 'सुनना क्रिया' में किसी भी प्रकार का भी निमित्त है।
कर्ता आदि अर्थों को कहने के लिए प्रातिपदिक से परे जो सुप्–प्रत्यय लगाये जाते है कारक विभक्तियाँ कहते हैं।
कारक छः है– कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। इन कर्म आदि कारकों का अपना एक–दूसरे से विलक्षण व्यापार है, इसलिए मुख्य क्रिया की सिद्धि में सभी का कर्तृत्व होते हुए भी

1 विभक्तिश्च। अष्टा. 1.4.74
2 सुप्तिङन्तं पदम्। अष्टा. 1.4.14
3 प्रागान्यतः शक्तिलाभान्न्यग्भावापादनादपि।
तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रवृत्तानां निवर्तनात्। भर्तृहरि वाक्यपदीयं साध्न समुद्देश (101)
अदृष्टत्वात् प्रतिनिधेः प्रविवेके च दर्शनात्। आरादप्युपकारित्वे स्वातन्त्र्यं कर्तुरुच्यते। (102)
4 स्वतन्त्रस्याप्रयोज्यत्वं करणादिप्रयोक्तृता।
कर्तुः स्वातन्त्र्यमेतद्धि न कर्माद्यनपेक्षता।।

व्यापारभेद की दृष्टि से ये कर्म, करण आदि भिन्न–भिन्न नामों से कहे जाते है।[5]

शाकटायन द्वारा पठित कारकसम्बन्धी नियम

शाकटायन ने अध्याय एक, पाद तीन, सूत्र–संख्या सतानवें, से लेकर तृतीय पाद पर्यन्त तक कारकसम्बन्धी सभी नियमों, उपनियमों का विवेचन व्याख्या सहित किया है। यथा– कारकं निर्वतकं कर्माद्युच्यते[6] (षट्कारकीत्यर्थ)।

यहाँ शाकटायन ने चन्द्रगोमी का अनुसरण करते हुए यद्यपि कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान एवं अधिकरण संज्ञाओं को परम्परा से स्पष्ट मानकर अनेक सूत्रों में उनका प्रयोग किया है, किन्तु उनके लक्षण देने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। यथा– शाकटायन ने प्रथमा विभक्ति न कहकर प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय यथा– (सु, औ, जस) का निर्देश किया है।[7] उन्होंने द्वितीया विभक्ति के लिए अम्, औट, शस्, तृतीया विभक्ति के स्थान पर टा, भ्याम्, भिस, चतुर्थी विभक्ति के लिए घे, भ्याम, भ्यस्, पंचमी विभक्ति के लिए ङसि, भ्याम्, भ्यस्, षष्ठी विभक्ति के लिए ङस्, ओस्, आम् तथा सप्तमी विभक्ति के लिए ङि, ओस्, सुप् प्रत्ययों का उल्लेख किया है।

इसके ठीक पूर्व पाणिनि[8] ने, चन्द्रगोमी[9] एवं पूज्यपाद देवनन्दी[10] ने सु, औ, जस् आदि सुप् प्रत्ययों का एक ही सूत्र में निर्देश किया है। दुर्ग सिंह ने भी कातंत्र व्याकरण की वृत्ति में सि, औ, जस् आदि प्रत्ययों का एक ही स्थान पर निर्देश किया है।

दूसरी ओर शाकटायन ने प्रातिपादिक के बाद आने वाले उपर्युक्त प्रत्ययों का अनेक सूत्रों में परिगणन किया है।[11]

शाकटायन ने त्रयी त्रयी विभक्तिः[12] सूत्र के द्वारा सु, औ, जस आदि प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा की है। उन्होंने उपपद विभक्तियों का कारक विभक्तियों के साथ ही प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार प्रथमा आदि विभक्तियों के स्थान पर तत्सम्बद्ध प्रत्ययों का निर्देश करके शाकटायन ने प्रथमा, द्वितीया आदि संज्ञाओं के प्रयोग का निराकरण करना चाहा परन्तु इस विलक्षण शैली को अपनाकर भी अन्त में उन्हें उपपद विभक्तियों के प्रसंग में "प्रथमा"[13] आदि विभक्तियों का नामोल्लेख करना ही पड़ा।

5 निष्पत्तिमात्रे कर्तृत्वं सर्वत्रैवास्ति कारके।
व्यापारभेदापेक्षायां करणादित्वसम्भवः।।

6 सम्प्रदानमपादनं करणाधिकरणं तथा।
स्वाम्यादिकर्म कर्त्ता च सेयं षट्कारकी स्मृता। शा.व्या. 3.4.64 क.म.टि.

7 अव्ययात् स्वौजस् ;1.3.97 शा.व्या.द्ध इस सूत्र की व्याख्या में शाकटायन ने प्रत्येक पद को सरल करने एवं सूत्र आशय बताने की कोशिश की है– यथा– पदात् प्रथमाया वेति विकल्पः। औ– जस गृहणमुत्तरार्थम्। सु– इत्युकारोऽवग्रहे उच्चारणार्थः। जसो जकारः संहितापाठे औकारस्या संदेहार्थः।

8 स्वौजसमौट.। अ. 4.1.2

9 स्वौजसमौट.। चा.व्या. 2.1.1

10 स्वौजसमौट.। जै.व्या. 3.1.2

11 (क) अव्ययात् स्वौजस्। 1.3.97
(ख) एक द्वि वहौः। 1.3.98
(ग) हाध्किसमया.। 1.3.100
(घ) टाभ्यांभिस्सिद्धौ। 1.3.127
(घ) घे भ्याम् भ्यस्। 1.3.135

12 शा.व्या. 1.3.181

13 (क) प्रथमादिः। 1.3.82 शा.व्या.
(ख) द्वितीया चैनेननानञ्चेः। शा.व्या. 1.3.190
(ग) पृथग्नाना तृतीया च। शा.व्या. 1.3.192
(घ) चेष्टागत्याप्येऽनाक्रान्ते द्वितीया चतुर्थ्यो। शा.व्या. 1.3.187
(घ) पञ्चमी चर्तेः। शा.व्या. 1.3.191
(च) षष्ठी। शा.व्या. 1.3.189
(छ) सप्तमी। शा. व्या. 1.3.185
(ज) कारक मध्येऽध्वकालेपञ्चमी च। 1.3.186

पाणिनीय एवं पाल्यकीर्ति शाकटायन के अक्षरशः समान सूत्रा

	पाणिनि	शाकटायन
1.	आशिषि नाथः। 2.3.55	आशिषि नाथः। 1.3.115
2.	अभिनिविशश्च। 1.4.47	अभिनिविशश्च।[14] 1.3.124
3.	स्वामीश्वराधिपतिदायाद साक्षि– प्रतिभूप्रसूतैश्च। 2.3.39	स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च। 1.3.179
4.	षष्ठी चानादरे। 2.3.386	षष्ठी चानादरे।[15] 1.3.183
5.	षष्ठी। 2.2.8	षष्ठी। 1.3.189

शाकटायन ने कई वार्तिकों को प्रामाणिकता देते हुए स्वतंत्र सूत्र मानकर अपने कई प्रयोजनों की सिद्धि की है

	पाणिनि	शाकटायन
1.	अभितः परतः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (अष्टा. 1.4.48) (वा. 137) उभसर्वतसोः कार्य्याः धिगुपर्य्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापिदृश्यते।। कारिका	हाधिक्समयानिकषोप...।[16] 1.3.100
2.	ह्वक्रोरन्यतरस्याम्। 1.4.53 दृशेश्च वा. अभिवादिदृशोरात्मनेपदे उपसंख्यानम् (वा. 134)	दृश्यभिवाद्योर्णेस्तङि। 1.3.116
3.	गतिबुद्धि. 1.4.52 आदिखाद्योनः। (वा. 129) प्रतिषेधो, शब्दायते नः। (म.भ. 1.3.5.7)	नित्याकर्मगमिज्ञाद्यर्थशब्दकर्मदृशोऽ–खाददिक्रन्दशब्दायह्वः। 1.3.118
4.	अकथितं च 1.4.51 अकर्मकधतुर्भियोगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्। (वा. 126)	कालाध्वभावदेशं वाऽकर्मचाकर्मकाणाम्। 1.3.125
5.	अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया (वा. 5040)	दाणा धर्मे तङ् च देयैः। 1.3.134
6.	उत्पातेन ज्ञापिते च (वा. 1460)	उत्पातेन ज्ञाप्ये।[17] 1.3.147
7.	भुवः प्रभवः। 1.4.31 क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वा. 140)	गह्वादिभिर्वहुलम्। 1.3.149
8.	ल्यवलोपे कर्मण्यधिकरणे च (वा. 1474, 75)	स्थानिप्यकर्माधरे। 1.3.161
9.	कर्तृकर्मणोः कृतिः 2.3.65	कर्मणि गुणे।[18] 1.3.169

14 यहाँ शाकटायन ने वृत्ति में विश् के आधर की कर्म संज्ञा की है। साथ ही चकार का प्रयोजन भी उद्धृत किया है। "चकारः" कर्म भवति न भवति चेति क्वचिदभावार्थः तेन या या संज्ञा यस्मिन–यस्मिन अभिनिविश्यते "कल्याणेऽभिनिवेशः अर्थेऽभिनिविष्टा" इति सिद्धं भवति। 1.3.124 अमोघावृत्ति

15 यद्भावो भावलक्षणं तस्मादनादरेऽवज्ञानेगम्यमाने षष्ठीसप्तम्यौ विभक्तौ भवतः। रुदति लोके प्राव्राजीत्। रुदतो लोकस्य प्राव्राजीत्। क्रोशिति बन्ध्ुवर्गे प्राव्राजीत्।। 1.3.183 अमोघावृत्ति

16 शाकटायन ने सूत्र में पठित प्रधन शब्द को अमोघावृत्ति में इस तरह स्पष्ट किया है– प्रधानमुपकार्यम्, यदर्थमन्यदुपाधीयतेततोऽन्यतस्योपकारकं– यत्तदर्थ तद्विशेषणं तदप्रधनम्। क.म.टि.

17 वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी। पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्।।

18 वृत्ति में शाकटायन ने यहाँ पाणिनि की तरह अप्रधन कर्म अर्थात् गौण कर्म वाली धातुओं की चर्चा व्याख्या सहित की है। यथा– "कर्मान्तरापेक्षं गुणत्वमप्रधनाधिकारात् अतो द्विकर्मका इहोदाहरणम्।" दुहि, याचि, रुध्ि, प्रच्छि, भिक्षि, जि, ब्रु, ह्व, शासि, चिञि, ञी, नी, कृञ्, कृषि, वहि, चोदि, दण्डि, णीनि द्विकर्मकम् (नीवह्योहरतेश्चापि मन्दंदण्डयोरपि)। जयतेरपि मन्यन्ते कृषेः कर्म द्वयं वुधाः।। द्विकर्मकाणी गुणमुख्यकर्मणोर्नामिनी। पृथग्वाचके तत्र विरोधभावात् षष्ठीद्वितीये तयोद्वयोरपि भवतः इति नित्ये

	गुणकर्मवेश्यते। (वा. 5042)	
10.	सप्तम्यधिकरणे च 2.3.36 निमित्तात्कर्मयोगे। (वा. 1490)	हेतौ कर्मणा।[19] 1.3.172
11.	सप्तम्यधिकरणे। 2.3.36 क्तस्येनिविषयस्यकर्मण्युपसंख्यानम् (वा. 1485द्ध	क्तेनो ङयोस्सुप्। 1.3.171

सूत्र शब्दावली भेद

	पाणिनि	शाकटायन
1.	दिवः कर्म च। 1.4.43	दिवः करणे वा। 1.3.106
2.	दिवस्तदर्थस्य। 2.3.58	न विनिमेय द्यूतपणम्। 1.3.108
3.	विभाषोपसर्गे। 2.3.59	वोपसर्गात्। 1.3.109
4.	व्यवहृपणोः समर्थयोः। 2.3.57	पणव्यवहृोः। 1.3.110
5.	अधीगर्थदयेषां कर्मणि। 2.3.52	स्मृत्यर्थदयीशां कर्म।[20] 1.3.111
6.	हृक्रोरन्यतरस्याम्। 1.4.53	हृक्रोर्वा। 1.3.121
7.	अधि शीङ्स्थासां कर्म। 1.4.46	शीङ्स्थासोधिराधरः। 1.3.122
8.	उपान्वध्याङ्वसः। 1.4.48	वसोऽनूपाध्याघः।[21] 1.3.123
9.	कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे। 2.3.5	कालाध्वनोर्व्याप्तौ। 1.3.126
10.	स्वौज...। 4.1.2	टाभ्यांभिस्सिङौ। 1.3.127
11.	सहयुक्तेप्रधाने। 2.3.19	सहार्थेन। 1.3.129
12.	येनाऽविकारः। 2.3.20	यद्भेदैस्तद्वदाख्या।[22] 1.3.130
13.	नक्षत्रे च लुपि। 2.3.45	काले भाद् वाऽऽधरे।[23] 1.3.131
14.	प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च। 2.3.44	प्रसिताऽववद्धोत्सुकैः। 1.3.132
15.	संज्ञोऽन्यतरस्याम् कर्मणि। 2.3.22	समोज्ञोऽस्मृतौ चाप्ये। 1.3.133
16.	चतुर्थी सम्प्रदाने। 2.3.13	ङे भ्यां भ्यस्।[24] 1.3.135
17.	क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः। 2.3.14	स्थानि वुणः। 1.3.136
18.	क्रुधद्रुहे...। 1.4.37	क्रुदद्रुहेर्ष्यासूयार्थैर्यं प्रतिकोपो न च कर्म। 1.3.137
19.	स्पृहेरीप्सितः। 1.4.36	स्पृर्हेवा। 1.3.139
20.	मन्यकर्मण्यनादरेविभाषाऽप्राणिषु। 2.3.17	मन्यस्याकाकादिषु यतोऽवज्ञा। 1.3.140
21.	चतुर्थी चाशिष्या...। 2.3.73	भद्रायुष्यक्षेमसुखार्थहितार्थहितैराशिषि।[25] 1.3.141
22.	नमः स्वस्तिस्वाहा...। 2.3.16	शक्तार्थवषड् नमः स्वस्ति–स्वाहा स्वधाहितैः।[26] 1.3.142
23.	प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता। 1.4.40	प्रत्याङः श्रुवाऽभ्यर्थके। 1.3.144
24.	अनुप्रतिगृणश्च। 1.4.41	प्रत्यनोर्गृणाख्यातरि। 1.3.145
25.	राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः। 1.4.39	राधीक्षौ यद्दैवे। 1.3.146
26.	श्लाघ∈θ ङ्स्थाशपां ज्ञीपस्यमानः। 1.4.34	श्लाघ∈θङस्थाशपां प्रयोज्ये। 1.3.148
27.	परिक्रियणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्। 1.4.44	परिक्रये करणे[27] वा। 1.3.151
28	स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन। 2.1.38	ङसि भ्यां भ्यस् स्तोकाल्प कतिपय– कृच्छ्रादसत्त्वे। 1.3.152
29.	दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च। 2.3.35	आरादर्थैः। 1.3.153
30.	विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्। 2.3.25	हेतौ गुणेऽस्त्रियाम्। 1.3.154
31.	धारेरुत्तमर्णः। 1.4.35	ऋणे।[28] 1.3.155
32.	ध्रुवमपायेऽपादानम्। 1.4.24	अपायेऽवधौ।[29] 1.3.156
33.	आख्यातोपयोगे। 1.4.29	आख्यातर्युपयोगे। 1.3.157
34.	आङ्मर्यादावचने। 1.4.88	आङा। 1.3.158
35.	अपपरी वर्जने। 1.4.87	वर्ज्येऽपपरिणा। 1.3.159
36.	प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्। 2.3.11	प्रतिनिधि प्रतिदाने प्रतिना। 1.3.160
37.	अन्यारादितरर्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपद	दिक्छब्दान्यार्थाराद्वहिरितरैः। 1.

प्राप्ते विकल्पः। लक्तघ्यप्खार्थऽस्तु धतोरभेदात् तुल्यकक्ष्यत्वाभावाच्च युगपदभिधनान्मुख्य एव कर्मणि भवन्ति। दुह्यते गौपयः।

19 यहाँ शाकटायन ने शब्दावली में परिवर्तन किया है यथा–
चर्मणी द्वीपिनं हन्ति दन्तर्योहन्ति कुञ्जरम्।
वालेषु चमरीं हन्ति सीम्नि सीमलको हतः।।

20 प्रस्तुत सूत्र की संरचनाक्रम में जहाँ पाणिनि ने "कर्मणि" शब्द का पाठ किया है, वहीं शाकटायन ने "कर्म" शब्द पढ़ा है। पाणिनि ने जहाँ स्पष्ट शब्दों में कर्मणि शेषे षष्ठी मानते है। वहीं शाकटायन "यत्कर्म तत्कर्म" द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेते है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आचार्य ने वृत्ति में स्पष्ट किया है कि "कर्मणः कर्मसम्बन्धी ते न।" सामान्यविशेषरूपाभ्यां स्वतो द्विधाअवस्थितस्य द्विधेदमवस्थापनं नियमार्थम्। तेनैषां कारकान्तरं सामान्यरुपेण नोच्यते मात्रा स्मृतम्। अयत्नादीति समासाभावार्थं च नेत्यनुवृत्या सिद्धे कर्मगृहणमुत्तरार्थम्।।

21 यहाँ शाकटायन ने पाणिनि द्वारा पठित "वस निवासे" धातु की जगह "उषि निवासै का पाठ भिन्नता हेतु किया है उदा. ग्रामोऽनूषितः।" "अन्वादिसाहचर्यादुपेत्यस्य स्थानार्थस्यैव ग्रहणम्– नानशनार्थस्य, तेन ग्रामे उपवसति भोजननिवृत्ति करोतीत्यत्र न भवति।।"

22 शाकटायन ने एक विशेष शब्दावली द्वारा सूत्र का प्रयोजन भी बताया है– "यस्य भेदिनः प्रकारवतोऽर्थस्य भेदैः प्रकारैविशेषैतद्वतस्तत्प्रकारवदर्थकस्य आख्या भवति ततः टा, भ्याम्, भिसित्येते प्रत्यया भवन्ति।" अक्ष्णा काणः, हस्तेनकुणिः। "आख्यागृहणं प्रसिद्धपरिग्रहार्थम्" (तेन) अक्ष्णा दीर्घ इति न भवति, अश्रुतक्रिया कल्पनया करणाद्विकल्पनायां यद्यपि तृतीया स्यात् (तथापि) तत्सम्बन्धे षष्ठी मा भूदित्यारम्भः।।

23 पुष्येण पायसमश्नीयात्। मघाभिः पललौदनम्। आधर इति किम्? अद्य पुष्यं विद्धि। अद्यकृतिकाः। आधरस्य करणविवक्षायाम् तृतीया सिद्धयति, अस्ति चाधारस्य करणविवक्षा, यथा स्थाल्या पचतीति तत क्रियते सम्बन्ध विवक्षायां षष्ठी वाधनार्थम्।। (शा.व्या. 1.3.131 की वृत्ति)

24 यहाँ पाल्यकीर्ति शाकटायन ने पाणिनि के चतुर्थी एव सम्प्रदाने की जगह सीधे प्रत्ययों को ही लिया है। साथ ही प्रत्युदाहरण में प्रत्येक पद को भी व्याख्यायित भी किया है– देयैरिति किम्? अजां नयति ग्रामम्। आप्य इति किम्? देवदत्तेन धनं दीयते। रजकस्य वस्त्रं ददाति। घ्नतः पृष्ठं ददातीत्यत्र न देयैराप्यतया रजकादिरुच्यत इति न भवति। ङकारोऽत्रोरत्र चङित्तो याडिति विशेषणार्थः।।

25 प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में शाकटायन ने जैनाचार्यो की विस्तृत नामावली प्रस्तुत की है– यथा– "भद्रमस्तु जिनशासनाय (शासनं दर्शनं शास्त्रामागमः पुरुषो मतम्" इति सुभूतिटीके।।)
हितं जिनदत्ताय भूयात् हितं जिनदत्तय भूयात्। हितशब्दग्रहणमाशिषि पक्षे षष्ठी प्रापणार्थम्। चतुर्थी तु शक्तार्थेत्यादीनां विद्यत एव। हितार्थगृहण तु पर्यायार्थ स्यात्।।

26 शक्तो देवदत्तो जिनदत्ताय। शक्नोति जिनदत्तो देवदत्ताय। "नमस्"– नमोऽर्दिभ्यः नारायणं नमस्कृत्येति उपपद विभक्तेः कारकविभर्क्तिवलीयसी इति द्वितीयैव। कथं नारायणाय नमस्कुर्याम्। स्वयंभुवे नमस्कृत्वेति? श्राद्धाय निर्गहगत इत्यादि इति वर्धमानीयवृत्तौ। अनव्ययानमः शब्दोऽव्यस्ति यतन्नमः किमः। किमपि शुश्रुम् देवताभ्यस्ता मन्तरेण नमसामवसान भूमिम्।।" इति विदग्ध चूडामणिः। (क.म.टि.)

27 शाकटायन ने यहाँ पाणिनि के "अन्यतरस्याम्" की जगह "वा" तथा सम्प्रदान की जगह "परिक्रये" अर्थात् चतुर्थ्यन्त पद तथा वर्तमान अर्थ का प्रयोजन (तत्करणे) शब्द में दिया है– जैसा कि उनकी वृत्ति में भी स्पष्ट है– तत्करणे (वर्तमानात्शब्दस्वरूपात्) उपर्युक्त चिन्तन से स्पष्ट हो जाता है कि शाकटायन ने प्रत्येक पद में अपनी विद्वत्ता दिखाने की चेष्टा की है।

28 यहाँ शाकटायन ने वर्तमान शब्द के द्योतक हेतु अर्थ में ऋणऽप्रधान वाचक शब्दों से नित्य ङसि, भ्यां, भ्यस् प्रत्यय किये हैं। अर्थात् कहा जा सकता है कि शाकटायन ने न केवल सूत्र को संक्षिप्त ही किया है, बल्कि यथास्थान अपनी वृत्ति में व्याख्या भी दी है यथा– हेताविति किम्? शतेन वद्धः। शतेन वन्धितः "कर्तरि प्रयोज्यप्रयोजके च तृतीया भवति। हेतुर्हि फलसाधन योग्यः पदार्थः। कत्राविभ्योऽन्यत्वेन विवक्षते (विवक्ष्यते) योगाविभागे नित्यार्थः।।"

29 प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में शाकटायन ने जहाँ प्रत्येक पद की व्याख्या की है वही उदाहरणों के प्रयोग में वे पाणिनि के ही ऋणी मालूम पड़ते हैं। क्योंकि प्रस्तुत सूत्र में सभी उदाहरण पाणिनि से मेल खाते हैं–
यहाँ चिन्तनीय बिन्दु यह है कि शाकटायन ने कुछ जैनी स्थानों के प्रति अपना अनन्यभाव प्रकट किया है अर्थात् उनमें कितनी–कितनी दूरी पर बसे स्थान है जैसा कि उनकी वृत्ति को देखने से स्पष्ट है– "वलाहकाद्विघोतते ततो निस्सृत्य ज्योर्तिविद्योतते विद्योतमां, वा ततो निर्धावतीति। कुतो भवान? पाटलिपुत्रातदागच्छामीति गवीधूमतः। (गवेरीधुक् इत्ययं त्यो भवति, गव्यते गम्यते नानादिग्वाणिजैरिति)" "गवीधुका नगरी" अथवा गम्यते उपलभ्यते शरीरयात्रा अनेनेति गवोधुक धन्यजातिः उनगरि विवक्षाऽत्र क.म.टि.। शायद यह स्थान आधुनिक गया ही हो ऐसा प्रतीति होता है।

	ाजाहि युक्ते। 2.3.29	3.162
38.	ज्ञोऽविदर्थस्यकरणे। 2.3.51	करणे ज्ञोऽज्ञाने। 1.3.165
39.	साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः। 2.3.43	साधुनिपुणेनार्चायाम्। 1.3.173
40.	अधिरीश्वरे। 1.4.96	स्वेशेऽधिना।[30] 1.3.174
41.	उपोऽधिके च। 1.4.86	उपेनाधिकिनि। 1.3.175
42.	आधरोऽधिकरणम् 1.4.45 सप्तम्यधिकरणे च। 2.3.36	आधरे।[31] 1.3.176

30 शाकटायन ने सूत्र में "स्वे" पद की वृत्ति में– "अधिमगधेषु श्रेणिकः।" ऐसा उदाहरण दिया है जिसका विवेचन इस तरह है– "पालनाकिनिमित्तो वर्द्धनपफलोऽत्र ओधाराधेयभावोऽधिना व्यज्यते– इत्युभयत्र समिन्यायादिति–वर्धमानमानीयवृत्तिः क.म.टि."

31 शाकटायन ने प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या में काशिकावृत्ति तथा सिद्धान्तकौमुदी की भाँति प्रत्येक पद को सप्रसंग प्रस्तुत किया है, जिसके कुछ अंश उद्धृत करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ– "आधारे" आधीयते कर्तृकर्मस्था क्रिया यस्मिन स आधारः। क.म.टि. "क्रियां प्रति य आधारो धारणत् कर्तृकर्मणोः। करणादि क्रिया सा हि तत्वाधिकरणं स्मृतम्।। करणादिकृतिरित्यर्थः इति वर्धमानीये।" क.म.टि.।

उपर्युक्त व्याख्या के अतिरिक्त भी शाकटायन ने काशिकावृत्ति की तरह तीनों आधारों (औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक) का भी सप्रमाण वर्णन वृत्ति में किया है– "औपश्लेषिकर्तृराधारः। औपश्लेषिके कर्मणः आधारः। औपश्लेषिक वैषयिकव्यपकासत्तिभेदवान्।"

इससे इतर भी शाकटायन ने एक और आधार माना है– "चतुर्धाधारआख्यातो घटाकाशतिलावधिः" मूर्तयोः कठिनयोः, उपरि अधोभावः औपश्लेषिकः, मूर्तामूर्तयोः अयावद द्रव्यभावित्वं वैषयिकं। यावद् द्रव्य भावित्वं व्यापकं। प्रत्यासत्तिः सामीप्यम्।। शा.व्या. 1.3.176

उपर्युक्त व्याख्या को देखने से पता चलता है कि शाकटायन एक दार्शनिकवेत्ता भी थे क्योंकि उन्होंने महाभाष्य पश्पशाह्निक की तरह शब्द का स्वरूप किसे माना जाये, इसका विवेचन भी वृत्ति में किया है– "निर्धरणे" तु कृष्णेत्यादेः पदान्तरात्। "जाति गुणक्रियादिभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्।"

1. जातौ– पुरुषाणां तेषु क्षत्रियः शूरः।
2. गुणे– गवां गोषु वा कृष्णा सम्पन्न क्षीरा।
3. क्रियायाम्– गच्छतां तेषु वा धावन्तः शीघ्राः।
4. द्रव्ये– यो देवदत्तो भवतां स आगच्छतु। इति वधमानीये (क.म.टि.)। शा.व्या. 1.3.176